RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

समकालीन हिन्दी नाटकों में राजनीतिक परिवेश

अंजू बाला

एम ए (हिंदी), नेट

भूमिका :–

समाज के उत्थान में राजनीति का सर्वाधिक योगदान होता है। साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज का ही एक अंग होता है। अतः एक साहित्यकार भी राजनीति से तटस्थ नहीं रह सकता। साहित्य चाहे किसी भी युग से संबंधित क्यों न हो, उसमें राजनीतिक प्रतिक्रिया अवश्य ही दिखाई पड़ती है। भले ही उसके स्तर भिन्न–भिन्न हों। आज साहित्य जिन सामाजिक समस्याओं एवं विद्रूपताओं पर प्रहार कर रहा है, उसमें नाटक जन समुदाय की परिस्थितियों एवं समस्याओं को चित्रित करेगा तभी वह इसे अपना बना सकेगा। आज का सम्पूर्ण जीवन ही राजनीति के केन्द्र से प्रभावित है। अतः नाटकों में प्रायः राजनीति का समावेश हो जाना स्वाभाविक है। समकालीन नाटकों में राजनीतिक परिवेश अथवा राजनीति के तात्कालिक चेहरे के प्रति गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। प्रमुख समकालीन नाटकों के माध्यम से राजनीति के चेहरे से नकाब हटाने से पूर्व समकालीनता, राजनीति एवं परिवेश आदि पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है।

समकालीनता :–

वास्तव में समकालीनता का सीधा सा आशय है, अपने समय के प्रति साहित्यकार का ईमानदार होना। अपने समय के प्रति साहित्यकार तभी ईमानदार होता है जब वह संकटों की परवाह किए बिना समय के क्रूर यथार्थ से अभेद की ज्वाला में जलता हुआ अद्भुत साहस के साथ समय को भी चुनौती दे डालता है। जैसा कि कबीर ने कहा है–

हौं घर जाल्यौ आपना, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर जालै आपना, चलै हमारे साथ।।

समकालीन साहित्य का समारंभ सातवें दशक के पूर्वाद्ध से माना जाना चाहिए। शाब्दिक दृष्टि से भले ही समकालीनता के अर्थ पर विद्वानों में मतैक्य न हो किंतु इसकी महता को हमें स्वीकार करना चाहिए।

नाटक :–

जब जन क्रियाओं का अनुकरण अनेक भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण होकर किया जाता है तो वह नाटक कहलाता है। भारतेंदु के मतानुसार–"दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को, उसके हृदयस्थ आशय को हाव–भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे।" डा॰ दुर्गा प्रसाद दीक्षित के अनुसार–

"जिस रचना में संवादों के माध्यम से चरित्र की मानसिकता कार्य–व्यापारों से प्रत्यक्षीकृत हो जाती है उसे नाटक का अभिधान दिया जाता है।" नाटक के उद्‌भव के संबंध में भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में एक घटना का उल्लेख किया है। उसके कथानुसार देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पाँचवें वेद के रूप में नाट्य वेद की रचना की। इसके लिए शिव ने ताण्डव नृत्य दिया और पार्वती ने लास्य प्रदान किया। इससे स्पष्ट होता है कि नाटक की उत्पत्ति चारों वेदों के अनन्तर हुई है। आधुनिक हिंदी नाटक के विकास क्रम को तीन भागों में बाँटा गया है–

(क) भारतेंदु युग–1850–1900ई॰
(ख)प्रसाद युग–1900–1930ई॰
(ग)प्रयादोत्तर युग–1930–आज तक

अतः समकालीन हिंदी नाटक प्रसादोत्तर युग के अन्तर्गत समाहित किया जाता है।

राजनीति का अर्थ :–

'राजनीति' शब्द का सम्बन्ध राजा अथवा राज्य से है। जब संसार में राजतन्त्र का प्रभुत्व था, तब राजा द्वारा राज्य की रक्षा और शासन–संचालन के लिए अपनाई गई नीति ही राजनीति थी।[1]

आज प्रजातन्त्र का फैलाव है। राजा का पद समाप्त हो चुका है। अतः राज्य एवम् प्रशासन की नीति राजनीति है। मूलतः राजनीति का सम्बन्ध राज्य और शासनतन्त्र से है। राज्य और शासनतन्त्र पर कैसे अधिकार किया जाए, इनकी सुरक्षा कैसे हो, ये जनहित में किस प्रकार प्रयुक्त किए जाएँ, इनके माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था का विकास किस प्रकार हो आदि राजनीति के विवेच्य बिन्दु हैं। परंन्तु आज की राजनीति का एक व्यवहारिक पक्ष और ही सामने आया है जिसका आधार है–सत्ता और लूट।

परिवेश का अर्थ :–

परिवेश ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों, स्थितियों से निर्मित एक प्रकार का वातावरण है, जिसके निर्माण में मानसिक विचार भी सहायक होते हैं, जिनमें व्यक्ति अपने आपको देख पाता है, जिसमें अतीत व वर्तमान के संश्लिष्ट रूप की झलक मिलती है।[2]

RRIJM 2015, All Rights Reserved

वस्तुतः "परिवेश की चेतना से विहीन आत्मा निर्जीव है, अभिव्यक्ति के सर्वथा अयोग्य है। परिवेश विभिन्न ऋतुओं के समान है। इससे रचना रूपी पौधे को अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होने में सहायता मिलती है। परिवेश– काल का वह सामाजिक अंश है, जिससे प्रताड़ित, पीड़ित अथवा आनन्दित, उद्वेलित और प्रेरित होकर कोई रचनाकार किन्हीं उज्ज्वल शुभ उद्देश्यों की सृष्टि करता है और इस प्रकार अपनी कृति को सामयिकता की सीमा से काल की परिधि में ले जाता है।"[3]

स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व आम आदमी की श्रद्धा की जो भावना नेताओं के प्रति थी, वह शनै–शनै समाप्त हो गई। नेताओं के झूठे नारे व दिखावे से परिपूर्ण घोषणापत्र अधिक समय तक जनता को बहकाने में असफल रहे। भारतीय राजनीति में 1960 के बाद मूल्यहीनता, नैतिक पतन का दौर चला। क्षेत्रीय दलों को बढ़ावा मिला और राजनीतिज्ञों ने आम जनता को जाति व धर्म के आधार पर बाँटकर अपना उल्लू सीधा किया।

समकालीन हिंदी नाटकों में राजनीतिक परिवेश अथवा रानीति के तात्कालिक चेहरे के प्रति गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। वर्तमान परिवेश को केन्द्र मानकर लिखे गये सभी नाटकों में यही चित्रित किया गया है कि राजनीति के फरेब के आगे सब विवश हैं तथा निस्सहाय हैं। जनता जिस न्याय के लिए बरसों से इन्तजार कर रही थी वह उसे नहीं मिला, आज तक नहीं मिला। आजादी से अब तक मतदाता बहकाने का खेल जारी है। प्रमुख समकालीन हिंदी नाटक बकरी, 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'विरोध', 'सिंहासन खाली है', 'मन्दिर की चारपाई, 'एक और द्रौणाचार्य, आदि में राजनीतिक जीवन की संवेदना आम आदमी की आस्थाओं को तोड़कर उसे शक्तिहीन और विवश बना रही है। समकालीन हिंदी नाटकों में चित्रित राजनीतिक परिवेश के कतिपय चित्र अवलोकनीय हैं–

आश्वासन एवं वाक्चातुर्य :–

"नेता–गद्गद् होकर, क्या जाने किस वेश में नारायण मिल जाये? आप लोग तो जनता जनार्दन हैं, ये मालाएँ मैं आपको समर्पित करके धन्य हो गया।"[4]

चुनाव प्रचार के समय नेताओं का वाक्चातुर्य देखते ही बनता है।

"नेता ––––––––––भाईयों

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सिंहासन पर बैठते ही सर्वोच्च पद मैं तुम लोगों में ही वितरित करूँगा। आप लोगों को कोई भी शिकायत नहीं होगी और देश की सुखमय सम्पदा हम सब मिल बाँट कर खा सकेंगे।"[5]

चुनाव में धन की भूमिका :–

सत्ता की लालसा प्रत्याशियों को वोट खरीदने के लिए प्रेरित करती है। चुनाव में क्रय–विक्रय का धन्धा पूरे जोरों पर चलता है। प्रत्याशी ज्यादा से ज्यादा मत प्राप्त करने के लिए अपार धनराशि लुटाने को तैयार रहता है। 'बकरी' नामक नाटक में कर्मवीर चुनाव व्यवस्था की पोल खोलते हुए कहता है– "यह सब बेकार का नाटक है, फरेब है और सबसे बड़ा दिखावा भी। वोट–चुनाव सब मजाक हो गया है। सब झूठ पर चल रहा है। गरीबों की बकरी पकड़ कर पहले उससे पैसा दुहा। अब वोट दुह रहे हैं, फिर पद और कुर्सी दुहेंगे।"[6]

चुनाव प्रचार के समय नारे लगाने, जुलूस निकालने, पोस्टर आदि लगाने का अच्छा खासा रोजगार लोगों को मिल जाता है। ज्यों–ज्यों मतदान का दिन नजदीक आता है, मजदूरी बढ़ती जाती है।

"महिला : ये सब अपने आदमी हैं नेताजी या किराए के भी?

नेता– मुस्कुराकर, जरा धीरे से, कुछ अपने, कुछ किराये के और कुछ विरोधी दल के लोगों को तोड़ लिया है। यह तो चुनाव है और चुनाव में हर प्रकार के हथकण्डे अपनाने की छूट तो दी ही जाती है, वरना––––––––।"[7]

जातिवाद आधारित राजनीति :–

चुनाव में हर जाति की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चुनाव क्षेत्र में जिस जाति का बाहुल्य है, प्रायः उसी जाति का प्रत्याशी चुनाव में विजयी होता है। जातीयता को बढ़ावा देने में सत्ताधारियों एवं नेताओं का पूरा हाथ होता है। ' एक सत्य हरिश्चंद्र' नामक नाटक में देवधर द्वारा लगाई गई जातिवाद की आग का चित्र पात्र गपोले के माध्यम से प्रस्तुत है– गपोले : "ऐसा हुआ कि अब तक दो नटुए नहीं आए, क्या? हरिजन और ब्राह्मणों में उधर दंगा हो गया है। गाँव के गाँव जल गए। आग बुझाने के लिए कुएँ से पानी नहीं लेने दिया। ब्राह्मण, ठाकुरों ने खूब की पिटाई। किसी की नाक काट ली किसी की आँखें निकाल ली।"[8]

टिकट देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि किस क्षेत्र में किस जाति का प्रभाव है। लोगों की जातीय भावना को उभार कर उनका शोषण किया जाता है।

राजनीति और धर्म :–

भारत में राजनीति एवं धर्म दोनों ही एक दूसरे को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। प्रत्येक दल प्रत्याशियों का चुनाव करते समय यह देखता है कि क्षेत्र विशेष में किस धर्म के मतदाता अधिक संख्या में हैं। चुनाव प्रचार के समय भी मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता है। विभिन्न धर्माधिकारियों, साधुओं एवं मठाधीशों तथा धर्म के ठेकेदारों द्वारा चुनाव प्रचार के समय प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की जाती है। 'मंदिर की **चारपाई' नाटक का दृश्य अवलोकनीय है :–**

"साधु : भाईयो। मैं जो भी हूँ, जैसा भी हूँ वह सभी तुमसे हूँ और तुम जैसे भी हो जो भी हो मुझसे हो। हम और तुम मिलकर जनता का शोषण कर सकते हैं, उसका इस्तेमाल

RRIJM 2015, All Rights Reserved

कर सकते हैं और जनता इसलिए होती है कि उसका इस्तेमाल किया जाये। उसकी बुद्धि खरीदी जा सकती है और उसका खून शराब के स्थान पर इस्तेमाल किया जा सकता है। उसकी शक्ति को अपने साथ चलाया जा सकता है.....। इसलिए बड़े प्रेम के साथ बोलों – 'हम सब एक हैं सभी बोलते हैं 'हम सब (एक हैं).... हम सब (एक हैं)"[9]

सत्ता का प्रभाव :–

समाज और समाज के सभी क्षेत्रों पर सत्ता का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। सुरेन्द्र वर्मा द्वारा रचित नाटक 'आठवाँ सर्ग' में राजा चन्द्रगुप्त का कलिदास को सत्ता का लाभ बताते हुए कहता है– "चन्द्रगुप्त : ––––––––राजधानी से दूर रह कर तुम क्या कर लोगे? क्या खा लोगे? ––––––––माना कि तुम एक से एक श्रेष्ठ रचनाएँ लिखोगे, लेकिन यदि राज्य की सहायता नहीं मिली तो वे दादुर की टर्र–टर्र की तरह आजीवन कुएँ में ही रहेंगी––– क्या तुम अभिव्यक्ति मात्र से ही सन्तुष्ट हो जाते हो? तुम्हारा रचनाकार और कुछ नहीं माँगता?–– तुम नहीं चाहते कि तुम्हारी कीर्ति सागरों जैसी फैले, तुम्हारा नाम ध्रुव तारे जैसा स्थायित्व? –– तुम यह भी नहीं चाहते कि तुम्हारा एक और अकेला स्वर लाखों–करोड़ों स्वरों में ढलता हुआ देश–देशान्तर को पार करके क्षितिज के चारों छोरों में प्रतिध्वनित हो उठे।"[10]

विरोध, दमन एवं हिंसा की राजनीति :–

एक दल के द्वारा दूसरे दल के दोषों को उजागर करने की भावना के पीछे मूल कारण सत्ता का मोह है। सत्ताधारी दल यह सहन नहीं कर सकता कि विरोधी दल का प्रभाव बढ़े। जहाँ सत्ता होती है वहाँ विरोध का जन्म लेना स्वाभाविक होता है। विरोध, संघर्ष षड़यन्त्र एवं हत्याओं की रचना करता है। राजनीति में अपने प्रतिद्वंद्वी को बदनाम करने के लिए घिनौने हत्थकण्डे अपनाए जाते हैं। अभिमन्यु अनत 'शबनम' द्वारा रचित 'विरोध' नाटक में उस स्थिति का अंकन है जब विरोधी युवकों को नौकरी आदि का प्रलोभन देकर विरोध के दमन की प्रवृति अपनाई जाती है। यथा–"आज से तुम्हें किसी बात का विरोध नहीं करना है। मैं तुम दोनों को अपने यहाँ नौकरी दे रहा हूँ।"[11]

विरोध दमन के सारे उपाय जब असफल हो जाते हैं तो हिंसा का रास्ता अपनाने से भी वर्तमान के राजनीतिज्ञ हिचकिचाते नहीं हैं। हिंसा का तरीका सबसे कारगर सिद्ध होता है। इसके लिए विरोधी दल के सदस्यों की हत्या तक करवा दी जाती है। यथा–गेंदालाल–"ठीक है। इलाके के माने हुए आदमी को गोली मारकर तुमने दिखा दिया कि काले राजा का शासन किसी का विरोध बर्दास्त नहीं कर सकता ।"[12]

इस प्रकार सत्ता पर कब्जा करने के लिए प्रत्येक दल उचित अनुचित साधनों का प्रयोग करता है। शक्ति प्रदर्शन द्वारा सत्ता हथियाने की कोशिश की जाती है। विभिन्न हथकण्डों के बल पर एक पक्ष दूसरे को परास्त करता है।

मानवीय मूल्यों का ह्रास :–

राजनीति में व्यक्ति किसी का उपकार व परोपकार आदि सभी मानवीय मूल्यो से नजरें फेर लेता है। रवींद्र भारती कृत 'फूकन का सुथन्ना' नाटक में विदुषक के संवाद से स्पष्ट होता है – "कुछ भी याद नहीं आएगा। डूब के बाहर निकली हुई जमीन को कछुए, मछली, जोंक की याद नहीं रहती। यही राजनीति है। जो याद रखता है, वह और तो सब कुछ कर लेगा, मगर राजनीति ––7। इल्ले, इल्ले।"[13]

नाटक में समाज में उपस्थित जंगल राज दिखाने का प्रयास किया गया है, जहाँ कोई कानून व्यवस्था नहीं है। अनैतिकता इस हद तक जड़ों में समा चुकी है कि अब अनैतिकता, नैतिकता के समान लगने लगी है। एक नेता के मन में दूसरे नेता के लिए ईर्ष्या व जलन है। एक भ्रष्ट को दूसरे की भी भ्रष्टाचार के लिए सहायता की आवश्यकता पड़ती रहती है। 'फूकन का सुथन्ना' नाटक में फूकन एक रंगकर्मी है। वह नाटक दिखाकर लोगों को सचेत करता है और दोगले चेहरों से नकाब हटाता है। नाटक में गीतों द्वारा व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया गया है। "पीतल पर चाँदी का, चाँदी पर सोने का ––––पानी चढ़वा लो। जिसका पानी उतर गया हो। चेहरे पर पानी चढ़वा लो––– "[14]

गीत में विभिन्न धातुओं पर पानी चढ़ाने की बात कही गई है। परन्तु वास्तव में यहाँ पर विभिन्न घिनौने चेहरों पर विभिन्न प्रकार के पानी चढ़ाने से अर्थ स्पष्ट होता है कि जिनके चेहरों पर से पानी उतर गया हो अर्थात् नीचे का असली और गंदा चेहरा दिखाई देने लग गया हो तो ऐसे चेहरों को फिर से ढकवा लो ताकि असलियत सामने न आ सके।

राजनिति और साम्प्रदायिकता :–

वर्तमान में राजनीति साम्प्रदायिकता के बिना मानो अपूर्ण है। भीष्म साहनी कृत नाटक 'मुआवजे' में साम्प्रदायिक दंगे भड़कने की संभावना है। इसी कारण पुलिस द्वारा दंगों के बाद हुई मारकाट से निपटने के लिए योजना और तैयारियाँ की जा रही हैं।

दगों से पहले ही घायलों को रखने का बन्दोबस्त किया जा रहा है। मुआवजे की राशि भी निश्चित कर ली गई है। भ्रष्ट व्यवस्था और प्रशासन द्वारा दंगों को रोकने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है। वर्तमान राजनीति केवल मंत्रियों के लड़ने का अखाड़ा मात्र बन कर रह गई है। समाज सुधार या देश की उन्नति के लिए मंत्रियों द्वारा कोई प्रयास नहीं किया जाता। आज के समाज में यदि व्यक्ति भ्रष्टाचार, अन्याय, बेईमानी, रिश्वतखोरी की बलि चढ़ गया तो वह पुराने जमाने का, इसके विपरीत यदि व्यक्ति काले धन्धों में स्वार्थ साधने लगा तो वह नए जमाने का कहा जाएगा। "अगर बलि का बकरा बनो तो तुम पुराने जमाने के, अगर कसाई बनो तो नए जमाने के।"[15]

RRIJM 2015, All Rights Reserved

वर्तमान समाज व्यवस्था और मनुष्य का दीन–ईमान, धर्म, रिश्ते–नाते, माता–पिता सब कुछ पैसा और केवल पैसा है। एक दुकानदार हथियार अधिक से अधिक बेचने और अधिक लाभ कमाने के लिए एक जाति के लोगों को दूसरी जाति के विरूध भड़काता है। एक जाति के कुछ ग्राहकों को जोकि उसकी दुकान पर लाठियाँ खरीदने आए हैं, दूसरी जाति के हथियारों के विषय में बताकर, जाति की रक्षा का हवाला देकर चार सौ छुरे बेचता है। दुकानदारः "यह वक्त पैसे गिनने का नहीं है महाराज, कौम के काम में कंजूसी नहीं करते। कौम पर मुसीबत आई है, पैसे गिनते रहोगे तो कौम की रक्षा क्या कर पाओगे?"[16]

साम्प्रदायिक दंगों में मनुष्य चिटियों की तरह मसल दिए जाते हैं। मनुष्यता का अस्तित्व ही समाप्त होता जा रहा है। वर्तमान समाज में व्यक्तियों में मनुष्यता के लक्षण देखने को नहीं मिलते 'मुआवजे' नाटक इसका प्रमाण है। नाटक में समाज के विभिन्न वर्गों को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में दिखाने का सफल प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह राजनीति से अछूता नहीं रह सकता। आज की राजनीति में मनुष्य की स्वभावगत विसंगतियाँ, भ्रष्टाचार, मनुष्य की मनुष्य के प्रति हीन दृष्टि, अर्थ की दासता, अन्याय आदि को रखा जा सकता है। आज की राजनीति का व्यवहारिक पक्ष है सत्ता और लूट। मनुष्य के छोटे–छोटे स्वार्थ और लोभ राजनीति के दामन को कलुषित कर रहे हैं। समकालीन हिंदी नाटकों में 'बकरी' 'मंदिर की चारपाई', 'फूकन का सुथन्ना', 'माटी मटैल', 'सबसे उदास कविता', 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'आठवाँ सर्ग', 'काला राजा', 'विरोध' आदि अनेक नाट्य कृतियाँ हैं जिनके माध्यम से नाटककारों ने राजनीति में व्याप्त नेताओं के झूठे आश्वासन और वाक्चातुर्य, चुनावों में धन की भूमिका, जातिवाद, धर्म का भ्रष्ट रूप, सत्ता का प्रभाव, विरोध, दमन एवं हिंसा, मानवीय मूल्यों का ह्रास, साम्प्रदायिकता जैसी विभिन्न खामियों का यथार्थ चित्रण करके जन साधारण के सामने कलुषित राजनीति का पटाक्षेप किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नगेन्द्रनाथ बसु, विश्व हिंदीकोश, पृ॰ 312
2. डॉ॰ श्याम शर्मा, आधुनिक हिंदी नाटकों में नायक, पृ॰ 64
3. सं॰ डॉ॰ वचनदेव कुमार, लेखक और परिवेश, पृ॰ 9
4. सुशील कुमार सिंह, सिंहासन खाली है, पृ॰ 49
5. सुशील कुमार सिंह, सिंहासन खाली है, पृ॰ 44
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ॰ 56
7. सुशील कुमार सिंह, सिंहासन खाली है, पृ॰ 45
8. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ॰ 17
9. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ॰ 38
10. सुरेन्द्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, पृ॰ 57–58
11. अभिमन्यु अनत 'शबनम', विरोध, पृ॰ 59
12. ललित मोहन थपत्याल, काला राजा, पृ॰ 95
13. डॉ॰ ओमपन्रकाश सारस्वत–बदलते मूल्य और आधुनिक नाटक, सं॰ 1984
14. जयदेव तनेजा, हिंदी नाटक : आजकल, सं॰ 2000
15. डॉ॰ गिरिराज शर्मा गुंजन, हिंदी नाटक मूल्य संक्रमण, सं॰ 1978
16. दमयन्ती श्रीवास्तव, हिंदी नाटक में आधुनिक प्रवृतियाँ, सं॰ 1994